(1) मौलिक अधिकार से अभिप्राय एवं परिभाषा :- मौलिक अधिकार की अवधारणा भारतीय संविधान के भाग 3 के अन्तर्गत समाहित की गयी है यह अवधारणा अत्यन्त उपयोगी है क्योंकि यह समान व्यक्तियों को संरक्षण प्रदान करती है यह अवधारणा आदर्श एवं कल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिये अति आवश्यक है यह अवधारणा इस भाग के अधीन समान्य व्यक्तियों के इन अधिकारों को उपलब्ध कराया गया है और अधिकार एक व्यक्ति को जीवित रहने हेतु तथा गरिमापूर्ण जीवन के लिये मूलभूत प्रकृति के है इस प्रकार मौलिक अधिकार को निम्नलिखित रूप से परिभाषित किया जा सकता है:-

"मौलिक अधिकारों का अभिप्राय उन सभी अधिकारों से है जो मानवप्राणी के लिये स्वस्थ वातावरण मे मौलिक एवं सर्वांगपूर्ण विकास हेतु अपरिहार्य होते होते है"।"

⇒ मौलिक अधिकारों की उत्पत्ति एवं इतिहास :- मौलिक अधिकारों का इतिहास अत्यधिक प्राचीन है अत: इसकी उत्पत्ति ऐतिहासिक रूप से नहीं ~~लिखि~~ लिखी जा सकती है स्वाभावत: मौलिक अधिकारों की उत्पति उतनी पुरानी है जितना मानव प्राणी की उत्पति है मौलिक अधिकार वर्तमान स्वरूप में प्रारम्भ से ही हमारे देश में प्रचलित थे मौलिक अधिकारों के चिन्ह शास्त्रों वेदो एवं अन्य भारतीय साहित्यों में उपलब्ध है।

⇒ व्यवहारिक रूप में मौलिक अधिकार सामान्य व्यक्तियों के सम्मान में इंग्लैण्ड के किंग जान के शासन काल में सन् 1215 में का जारी अत्यधिक प्रशंसनीय दस्तावेज जिसे मैग्नाकार्टा के नाम से जाना जाता है जिसके द्वारा इंग्लैण्ड के साधारण व्यक्तियों को कुछ अधिकार प्रदान किये गये है।

⇒ सन् 1689 में एक दस्तावेज निर्मित किया गया जिसे बिल ऑफ राइट के नाम से जाना जाता है। ये दस्तावेज भी कुछ कुछ अधिकारों को प्रकट कर रहा है जिसे मौलिक अधिकार के रूप में जाना जाता है

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

⇒ सन 1789 में फ्रांस में कुछ महत्वपूर्ण तथा असंयोजित (अ-हस्तान्तरित नहीं जा सकता) अधिकार सामान्य व्यक्तियों को प्रदान किये गये अधिकारों की ऐसी घोषणा को Declaration of Right of Man Citizen 1789 के नाम से जाना जाता है।

⇒ इन अधिकारों को सर्वप्रथम अमेरिकी संविधान में मौलिक अधिकार के रूप में संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया।

⇒ मौलिक अधिकारों की झलक इस संविधान से प्राप्त करते हुये भारतीय संविधान सभा ने इस अवधारणा को स्वीकार कर लिया यह अवधारणा संविधान सभा ने इसलिये ग्रहण किया कि इसका आशय कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना तथा एक व्यक्ति को स्वच्छ एवं उचित अवसर विकास हेतु प्रदान करना था।

एक व्यक्ति के मौलिक अधिकार तथा सामाजिक हितों के बीच सामंजस्य –

एक व्यक्ति के मौलिक अधिकार तथा सामाजिक हित के बीच सामंजस्य स्थापित करने की आवश्यकता है अन्यथा लोक अव्यवस्था उत्पन्न हो जायेगी सामाजिक हित की बलि एक व्यक्ति के मौलिक अधिकार के रूप में नहीं दी जा सकती। मौलिक अधिकार अत्यधिक शक्तिशाली होते हैं तथा एक व्यक्ति इनका निरंकुशात्मक प्रयोग कर सकता है तथा इनके अतिशय प्रयोग द्वारा सामाजिक हित को क्षति पहुंचा सकता है इस बिन्दु पर विचार करने पर मौलिक अधिकारों को आत्यन्तिक स्वरूप को प्रदान नहीं किया गया तथा इनके अतिशय प्रयोग को रोकने के लिये युक्तियुक्त प्रतिबन्धों को आरोपित करना अनुज्ञात कर दिया गया।

⇒ ए.के. गोपालन vs महाराष्ट्र राज्य के वाद में न्यायाधीश मुखर्जी ने यह अभिकथित किया कि कोई आत्यन्तिक या अनियन्त्रित स्वतन्त्रता नहीं हो सकती है समाज की सुरक्षा के लिये कुछ प्रतिबन्ध होने चाहिये। अतः सामाजिक हित तथा एक व्यक्ति के मौलिक अधिकारों के मध्य सामंजस्य स्थापित करने हेतु युक्तियुक्त प्रतिबन्ध स्थापित किये जा सकते हैं।

Scanned with CamScanner

ने कहा कि न्यायपालिका अनु 12 के अन्तर्गत परिभाषित राज्य शब्द में नही आती है अत: न्यायालय के विरुद्ध याचिका जारी नही की जा सकती

⇒ A.R. Antule Vs R.S. Nayak के मामले में S.C ने यह कहते हुये विपरीत मत प्रकट किया कि न्यायपालिका को भी राज्य शब्द के अन्तर्गत लाया जा सकता है।

✓ यद्यपि इस बिन्दु पर विवाद है कि न्यायपालिका ~~को भी राज्य शब्द के अन्तर्गत~~ राज्य है अथवा नही परन्तु निश्चयात्मक रूप में कहा जा सकता है कि अनु 12 के अन्तर्गत परिभाषित राज्य शब्द के अन्तर्गत नही समझा जाना चाहिये।

मौलिक अधिकारों का निलम्बन

मौलिक अधिकार मानव प्राणी के अस्तित्व तथा विकास के लिये अति आवश्यक होते है अत: इन्हे निलम्बित नही किया जाना चाहिये यदि राज्य साधारण परिस्थितियो में इन मौलिक अधिकारो को उल्लंघित या कर का निलम्बित करती है तो पीडित पक्षकार न्यायालय द्वारा इन्हे प्रवर्तित करा सकता है।
यद्यपि कि इन मौलिक अधिकारों को निलम्बित नही किया जा सकता परन्तु राष्ट्र की सुरक्षा हेतु Art 352 में आपात की उद्घोषणा की जाती है अनु 20 तथा 21 को छोडकर शेष मौलिक अधिकारो को निलम्बित किया जा सकता है।

44 वें संशोधन के पूर्व अनु 21 तथा 20 के अन्तर्गत सम्पादित मौलिक अधिकार भी निलम्बित किये जा सकते थे ~~परन्तु~~ परन्तु इस संशोधन के पश्चात मौलिक अधिकार निलम्बित नही किये जा सकते

Scanned with CamScanner

अधिकारों का त्याग अनुज्ञात नहीं किया जाना चाहिए यह तथ्य कि मौलिक अधिकारों का त्याग जा सकता अथवा नहीं S.C ने बशेश्वर नाथ vs इनकमटैक्स कमिश्नर के मामले में विचरित किया गया। उच्चतम न्यायालय ने इस मामले में अपना यह मत प्रकट किया कि मौलिक अधिकारों को त्यागा नहीं जा सकता है।

विधि का अभिप्राय :- यह प्रावधानित किया गया है कि यदि राज्य के द्वारा कोई विधि निर्मित की जाती है जो मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करती है तो वह विधि शून्य हो जायेगी ऐसी विधि संविधान के पूर्व की अथवा संविधान के पश्चात की हो सकती है इसी उद्देश्य के लिये मौलिक अधिकारों के सन्दर्भ हेतु विधि शब्द का अभिप्राय जानना आवश्यक हो जाता है विधि शब्द अनु० 13 के खण्ड 3 के अन्तर्गत अभिव्यक्त रूप से परिभाषित किया गया है जो निम्नलिखित है :—

" विधि शब्द के अन्तर्गत अध्यादेश, आदेश, विनियमन नियम, उपनियम, अधिसूचना तथा रूढ़ि तथा ऐसी प्रथायें, जो भारत क्षेत्र में विधि का बल धारण करती हैं आती हैं सब सम्मिलित है "

(रूढ़ि ऐसी हो, जो प्रचलित है युक्तियुक्त लोकनीति के विरुद्ध न हो, तथा अनैतिक न हो।

इस अनुच्छेद के अन्तर्गत दी गयी परिभाषा पर दृष्टिपात करने के आधार पर कहा जा सकता है कि मौलिक अधिकारों के उद्देश्य के लिये विधि को विस्तृत भाव में परिभाषित किया गया है विधि को विस्तृत भाव में परिभाषित करने के पीछे तर्क यह है कि राज्य को किसी भी प्रकार से मौ. अधिकारों को उल्लंघन करने से निवारित किया जा सकता है।

Scanned with CamScanner

है कि-संवैधानिक संशोधन विधि अनु 13(3) के अन्तर्गत विधि शब्द की परिभाषा में नहीं आता है अनु 13 का खण्ड (4) 1971 मे 24 वे संशोधन द्वारा संविधान मे जोड़ा गया जिसका जोड़ा जाना गोलकनाथ बनाम स्टेट आफ पंजाब (1967) के निर्णय द्वारा उत्पन्न हुये विवाद का का परिणाम था (क्योंकि इस निर्णय मे संशोधन को विधि माना गया इसलिये यह संशोधन करना पड़ा) इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णित किया कि संवैधानिक संशोधन भी अनुच्छेद (13) के खण्ड (3) में परिभाषित विधि के परिक्षेत्र मे आता है।

उच्चतम न्यायालय द्वारा इस मामले मे दिये गया निर्णय शंकरी प्रसाद vs भारत संघ 1951 तथा सज्जन सिंह v Stat of राजस्थान 1950 मे दिये गये निर्णयो के विपरीत था इन मामलो मे उच्चतम न्यायालय का यह मत था कि संवैधानिक संशोधन अनु 13 खण्ड (3) के अन्तर्गत विधि शब्द के अन्तर्गत नही आता है।

इन निर्णयो में इस तथ्य के सम्बन्ध मे कि क्या संवैधानिक संशोधन को विधि माना जाना चाहिये अथवा नही, जैसा कि यह पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि 24वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा संवैधानिक संशोधन को को विधि शब्द के परिक्षेत्र से बहिष्कृत कर दिया गया इसलिये इस संशोधन को

Keshavanand Bharti

vs

Stat of Kerala A.I.R. के मामले

में उच्चतम न्यायालय मे चुनौती दी गयी इस मामले मे S.C ने निर्णीत किया कि संवैधानिक संशोधन अनु 13 (3) के अन्तर्गत विधि शब्द मे नही आता है अत: कोई व्यक्ति यह दावा नही कर सकता है कि संवैधानिक संशोधन के द्वारा उसके मौलिक अधिकारो का उल्लंघन किया गया है

⇒ पृथक्करणीयता का सिद्धान्त।

अनु 13 (1) तथा (2) के अन्तर्गत यह यह अभिव्यक्त रूप से प्रावधानित किया गया है कि यदि कोई विधि मौलिक अधिकारो का उल्लंघन करती है तो वह उस विस्तार तक शून्य होगी जिस विस्तार तक वह मौलिक अधिकारो का उल्लंघन करती है" इसका अभिप्राय यह है कि सम्पूर्ण विधि शून्य नही होगी बल्कि विधि का केवल उतना ही भाग शून्य होगा जो मौलिक अधिकारो का उल्लंघन करता है।

Scanned with CamScanner

...माना जाता है।
उच्चतम न्यायालय ने इस सिद्धान्त को —
=> स्टेट आफ बाम्बे vs बालसारा
=> R.M.D.C vs भारत संघ
=> रमेश थापर vs स्टेट आफ मद्रास
के मामलो मे मान्य ठहराया।

Art.13(1) आच्छादन (ग्रहण) का सिद्धान्त (Doctrine of Eclipse) यदि
कोई विधि चाहे संसद द्वारा या चाहे विधान मण्डल द्वारा निर्मित की गयी हो और वह मौलिक अधिकारो का उल्लंघन करने वाली हो जाती है तो वह शुन्य हो जायेगी।
यह प्रश्न अथवा विवाद उच्चतम न्यायालय के समक्ष विचारार्थ आया कि क्या उस विधि को जो किसी मौलिक अधिकार से असंगत होने के कारण शून्य हो गयी थी उसे पुनर्जीवित किया जा सकता है यदि वह मौलिक अधिकार अस्तित्व मे नही रह जाता है।
=> भिखाजी v मध्यप्रदेश राज्य (1955) SC के वाद मे यह निर्णीत किया गया था कि संविधान की पूर्व की विधियो को पुनर्जीवित किया जा सकता है क्योकि ये प्रारम्भ से शुन्य नही होती क्योकि मौलिक अधिकार के सृजन से ये विधिया आच्छादित हो जाती है।
इस निर्णय द्वारा यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि संविधान के पूर्व कि विधि प्रारम्भ से अथवा शाश्वत रूप से शुन्य नही होती है बल्कि किसी मौलिक अधिकार के द्वारा उत्पन्न की गयी बाधा के कारण मृतप्राय तथा निष्क्रिय हो जाती है।
अतः ऐसी बाधा एक प्रकार से ग्रहण उत्पन्न कर

Scanned with CamScanner

अनु 13 खण्ड (2) पर दृष्टिपात करने से यह प्रतीत होता है कि राज्य को ऐसी विधि बनाने से निषिद्ध कर दिया गया है जो मौलिक अधिकारों के प्रतिकूल है तथा राज्य द्वारा ऐसी विधि निर्मित की जाती है तो वह उस विस्तार तक शून्य होगी जिस विस्तार तक विपरीत है। यदि विधि इस प्रकार शून्य हो जाती है तो इसे पुन: जीवित किया जा सकता अथवा नही यह तथ्य उच्चतम न्यायालय ने :—

→ दीप चन्द

v

उत्तर प्रदेश राज्य AIR. के मामले

में विचारित किया गया कि इस विधि को पुनर्जीवित नही किया जा सकता है क्योंकि यह प्रारम्भ से ही शून्य होती है इस निर्णय का अभिप्राय यह है कि आच्छादन का सिद्धान्त संविधानोत्तर विधियो पर लागू नही होता है।

→ महेन्द्र लाल जैन

vs

उत्तर प्रदेश राज्य AIR. के मामले

में उच्चतम न्यायालय ने पुन: इस मामले में इस अवधारणा को यह कहते हुये अनुमोदित किया कि ग्रहण का सिद्धान्त केवल संविधान के पूर्व की पूर्व की विधियों पर लागू होता है परन्तु संविधान के पश्चात विधियों पर लागू नही होता है।

परन्तु उच्चतम न्यायालय के द्वारा उपर्युक्त मामलो में विनिश्चित मत परिवर्तित कर दिया गया।

→ स्टेट आफ गुजरात

v

अम्बिका मिल्स AIR. के मामले

उच्चतम न्यायालय के द्वारा आच्छादन के सिद्धान्त को सीमित भाव में संविधानोत्तर विधियों पर भी लागू कर दिया गया इस मामले में यह निर्णीत किया गया कि संविधानोत्तर विधियों को गैर नागरिकों के सम्बन्ध में पुनर्जीवित किया जा सकता परन्तु

रक्षाण की

नागरिको के सम्बन्ध मे पुनर्जीवित नही किया जा सकता है ऐसा

प्रथार

पुनः दुलारे लोधा

थर्ड एडिशनल डिस्ट्रिक जज कानपुर के

मामले मे आच्छादन के सिद्धान्त को संविधानोत्तर विधियों मे पूर्ण प्रभाव प्रदान किया गया इस मामले मे S.C ने यह अभिनिर्धारित किया गया कि संविधानोत्तर विधि को नागरिको तथा गैर नागरिको दोनो के सम्बन्ध मे पुनर्जीवित किया जा सकता है

इन दोनो निर्णयो का प्रभाव यह है कि आच्छादन का सिद्धान्त संविधानोत्तर विधियों पर भी लागू होता है। वर्तमान समय मे आच्छादन के सिद्धान्त के बारे मे निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि यह सिद्धान्त दोनो ही विधियों पर चाहे वो संविधान के पूर्व की या संविधान के पश्चात् की है दोनों पर समान रूप से लागू होता है।

यद्यपि कि उच्चतम न्यायालय ने ग्रहण के सिद्धान्त को संविधानोत्तर विधियो पर भी परिवर्तित कर दिया परन्तु यह अवधारणा उचित तर्क पूर्ण तथा युक्ति युक्ति नही है क्यों कि ऐसी विधि प्रारम्भ से ही मौलिक अधिकारो का उल्लंघन करने के कारण प्रारम्भ से शून्य हो जाती है जिसे कभी भी पुनर्जीवित नही किया जा सकता है।

⇒ यदि इस सिद्धान्त को Allow किया जाता है तो निम्न परिणाम होंगे —

1. राज्य ऐसी विधि निर्मित करेगा जो मूल अधिकारों के उल्लंघन मे हो
2. ऐसे ~~अधिकारो~~ विधिया को जो FR के वायलेट करेगी उन्हे न्यायालय द्वारा शून्य घोषित कराना होगा
3. न्यायालय मे वाद संख्या बढ़ेगी

—